© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

समाजवादी यथार्थवाद: गोर्की और प्रेमचंद का साहित्य

अरविंद कुमार यादव
सेंटर फॉर रसियन एंड सेंट्रल एशियन स्टडीज,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,नई दिल्ली

यथार्थवाद उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में साहित्यिक आंदोलन के रूप में सामने आता है। यथार्थवादी साहित्य में तथ्य ही बोलते हैं , लेखक चुप रहता है तथा अनुभवों के साधारण पहलुओं पर बल दिया जाता है। स्वच्छंदतावादी साहित्यकार जहाँ सृष्टा होने का दावा करता है और सृजन को महत्व देता है, वहीं यथार्थवादी साहित्यकार निरिक्षण और प्रमाणिकता पर बल देता है। यथार्थवादी रचनाओं में अलंकृति तथा काव्यात्मक शैली का निषेध रहता है क्योंकि इससे समस्या का आकर्षण मंद पड़ जाता है। इसका उद्देश्य मानव - जीवन और मानवीय चरित्र के नग्न तथा स्पष्ट सत्य को वाणी देना है भाषा में भी ग्रामीणता तथा जनवादिता का आग्रह है।

यथार्थवाद का नया स्वरुप हमें रुसी रचनाओं में देखने को मिलता है। तुर्गनेव, चेख़व जैसे रुसी लेखकों ने फ्रांसीसी प्रकृतिवादियों के दृष्टिकोण को अमान्य समझा तथा यथार्थ के साथ उच्चतर उद्देश्यों को शामिल करने पर बल दिया। चेखव ने लिखा है कि यथार्थवाद केवल बाह्य जगत का अनुकरण नहीं करता वरन वह उच्चतर उद्देश्यों से प्रेरित होता है यद्यपि कलाकार आदर्शों के प्रति अपने आकर्षण को खुलकर प्रगट नहीं होने देता। चेखव के नाटकों और कहानियों में यथार्थवाद का यही सुलझा हुआ रूप मिलता है। उन्नीसवीं सदी के यथार्थवादी आंदोलन से प्रभावित होकर लिखने वाले सभी लेखकों ने अपने सामने सामाजिक न्याय तथा सामाजिक उत्थान का अभिप्राय ध्यान में रखकर साहित्य रचना की। १९३२ के लगभग गोर्की द्वारा यथार्थवाद की नयी व्याख्या समाजवादी यथार्थवाद (Socialist Realism)के रूप में की गयी, यथार्थवाद के इस नए आदर्श को सरकारी मान्यता प्राप्त हुई। समाजवादी यथार्थवाद का आग्रह है कि समाज की यथार्थ स्थिति का व्यापकतम उपयोग हो,जीवन की प्रगतिशीलता के सम्बन्ध में उपन्यासकार की निश्चित मान्यताएं हो, उसे पार्टी का अनुमोदन प्राप्त हो और सामाजिक योजना का सम्पूर्ण स्वरुप उपन्यासकार के सामने रहे। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्ध ,व्यक्तिपरक प्रतीक और तटस्थ चिंतन की गुन्जाइश नहीं है। उसे प्रगतिशीलता के मार्क्सवादी आदर्श का सम्पूर्ण रूप से निर्वाह करना होगा।

सोवियत साहित्य का विकास समाजवादी यथार्थ के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। रुसी साहित्य जनहित की भावना से सराबोर देशभक्ति का साहित्य था। उसका केंद्र व्यक्ति नहीं जनता थी। जनता की आजादी की भावनाओं और भविष्य की उसकी उज्ज्वल आशाओं के प्रति वह पूर्णतः सजग था। साहित्य की यही विचारधारा तत्कालीन हिंदी साहित्य में

भी देखने को मिलती है। इसका प्रमाण हमें प्रेमचंद की कहानियों और उपन्यासों में मिलता है। 'सामूहिक सम्पत्ति ' और 'सामूहिक श्रम' ही वे आधारभूत सैद्धांतिक मान्यताएं हैं जिस पर समाजवाद का भवन खड़ा होता है। इस सामूहिक -संपत्ति और सामूहिक श्रम के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले समाज से 'व्यक्तिगत संपत्ति ' एवं 'व्यक्तिगत -श्रम ' की प्रथा का नाश हो। क्योंकि 'व्यक्तिगत संपत्ति 'का अंत हो जाने के बाद ही वह अपने वैयक्तिक -बंधनों से मुक्त हो पायेगा और सहअस्तित्व के उस धरातल पर खड़ा होने की स्थिति में होगा जिसमे सामूहिक श्रम और सामूहिक संपत्ति ही एक मात्र लक्ष्य बन सकती है।

वीं शताब्दी के लेखकों ने 19अधिकतर बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधियों द्वार सत्य और न्याय की तलाश का वर्णन किया था। लेकिन गोर्की की रचनओं में नैतिक एवं ,जन साधारण से आने वाले लोग ,के स्त्री और पुरुष "निचले स्तर" न्याय की तलाश करते हैं-सामाजिक। गोर्की में सत्यस्वाधीनता ,सौन्दर्य ,न्याय , की आकांक्षाअच्छे प्रकार के जीवन के , लिए प्रयास आदि में हम साधरण जनता को ही सक्रिय पाते हैं। अपने से पहले के साहित्यकारों के यथार्थवाद से अपने यथार्थवाद का भेद बताते हुए गोर्की लिखते हैं :"हमारे यथार्थवाद को कुछ सकारात्मक बात कहनी है और किसी चीज की रक्षा करनी है।) उसे चाहिए कि जीवन के सकारात्मक सिद्धान्तों को हाड़ मांस का जामा पहनाये "Gorky1946:(52)

गोर्की शुरूआती दिनों से ही क्रान्तिकारी आन्दोलनों से जुड़े रहे। बाद में कम्युनिस्ट पार्टी बोल्शेविक में शामिल होकर जनता के संघर्षों में काफ़ी क़रीब से जुड़ गये और इसी दौरान उन्होंने पार्टी में शामिल मज़दूरों और क्रान्तिकारियों के जीवन और संघर्ष पर आधारित अपना विश्व प्रसिद्ध उपन्यास "माँ" 1906)(लिखा जिसके बारे में लेनिन ने कहा था कि इसे पढ़कर उन सभी मज़दूरों को क्रान्ति के उद्देश्यों को समझने में मदद मिलेगी जो स्वतस्फूर्त ढंग से आन्दोलन में :

गोर्की लिखते हैं कि "मेरे लिये मानव से परे विचारों का कोई अस्तित्व नहीं है। मेरे नज़दीक मानव तथा एकमात्र मानव ही सभी वस्तुओं और सभी विचारों का निर्माता है। चमत्कार वही करता है और वही प्रकृति की सभी भावी शक्तियों का स्वामी है। हमारे इस संसार में जो कुछ अति सुन्दर है उनका निर्माण मानव श्रम, और उसके कुशल हाथों ने किया है। हमारे सभी भाव और विचार श्रम की प्रक्रिया में उत्पन्न होते हैं और यह ऐसी बात है, जिसकी कला, विज्ञान तथा प्रविधि का इतिहास पुष्टि करता है। विचार तथ्य के पीछे चलता है। मैं मानव को इसलिये प्रणाम करता हूँ कि इस संसार में कोई ऐसी चीज़ नहीं दिखाई देती जे उसके विवेक, उसकी कल्पनाशक्ति, उसके अनुमान का साकार रूप न हो19 गोर्की) 77:52 (। वहीँ वे आगे लिखते हैं कि ""यदि "पावन" वस्तु की चर्चा आवश्यक ही है, तो वह है अपने आप से मानव का असन्तोष, उसकी यह आकांक्षा कि वह जैसा है उससे बेहतर बने। जिन्दगी की सारी ग़न्दगी के प्रति जिसे उसने स्वयं जन्म दिया है, उसकी घृणा को मैं पवित्र मानता हूँ। ईष्या, धनलिप्सा, अपराध, रोग, युद्ध तथा संसार में लोगों बीच शत्रुता का अन्त करने की उसकी इच्छा और उसके श्रम को पवित्र मानता हूँ।"

गोर्की अपने उपन्यास "माँ")1906 (में एक मज़दूर के शब्दों में विचार प्रकट करते हुये कहते हैं, "क्या हम सिर्फ़ यह सोचते हैं कि हमारा पेट भरा रहे? बिल्कुल नहीं" "हमें उन लोगों को जो हमारी गर्दन पर सवार हैं और हमारी आँखों पर पट्टियाँ बाँधे हुए हैं यह जता देना चाहिए कि हम सब कुछ देखते हैं। हम न तो बेवक़ूफ़ हैं और न जानवर जैसे कि पेट भरने के अलावा और किसी बात की हमें चिन्ता ही न हो। हम इंसानो का सा जीवन बिताना चाहते हैं! हमें यह साबित कर देना चाहिए कि उन्होंने हमारे ऊपर खून पसीना एक करने का जो जीवन थोप रखा है, वह हमें बुद्धि में उनसे बढ़कर होने से रोक नहीं सकता!"

गोर्की ने रूस की दलित उत्पीड़ित जनता का जीवन जितने क़रीब से देखा था उतने ही स्पष्ट रूप से उसको अपने साहित्य में चित्रित किया और व्यापक जनसमुदाय को शिक्षित करने में एक अत्यन्त ऐतिहासिक भूमिका निभाई। गोर्की ने लिखा है, "दुनिया में अन्य कोई चीज़ आदमी को इतने भयानक रूप से पंगु नहीं बनाती जितना कि सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना।" गोर्की ने अपनी कहानियोँ, नाटकों, उपन्यासों और लेखों के माध्यम से समाज को सिर्फ़ चित्रित ही नहीं किया बल्कि उन्हें एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया, "क्या यह ज़रूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाये?हाँ, यह ज़रूरी है! यह इसलिये ज़रूरी है श्रीमान कि आप धोखे में न रहें, कहीं यह न समझने लगें कि इस तरह की बातें केवल बीते जमाने में हुआ करती थीं! आज भी आप मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते हैं,सुन्दर ढंग से लिखी भयानक कहानियाँ और किस्से पढ़ने में आपको आनन्द आता है। रोंगटे खड़े कर देने वाली कल्पनाओं से आपके हृदय को सनसनाने और गुनगुनाने से आप ज़रा भी परहेज़ नहीं करते। लेकिन मैं सच्ची भयानकताओं से परिचित हूँ। आये दिन के जीवन की भयानकताओं से। यह मेरा अवंचनीय अधिकार है कि उनका वर्णन करके आपके हृदयों को कुरेदूं, उनमें चुभन पैदा करूँ ताकि आपको ठीक-ठीक पता चल जाये कि किस दुनिया में और किस तरह का जीवन आप बिताते हैं।" "कमीना और गन्दगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं।" "मैं मानव-जाति से प्रेम करता हूँ और चाहता हूँ कि उसे किसी भी तरह के दुःख न पहुँचाऊँ, परन्तु इसके लिये न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिये और न ही चमकीले शब्द-जाल और खूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिये! ज़रूरी है कि हम जीवन की ओर मुँह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उड़ेल दें(गोर्की 1977:99) ।"

गोर्की अपने समय के वर्तमान जीवन की आलोचना के साथ ही वर्ग समाज में प्रतिस्पर्धा की होड़ में होने वाले मनुष्यों के व्यक्तिगत विघटन की कड़ी आलोचना करते थे और उनका मानना था कि जब तक मेहनत करने वालों की मेहनत को कुछ परजीवी हड़पते रहेंगे तब तक समाज में शान्ति नहीं हो सकती, "समूचे वातावरण में एक-दूसरे को भक्षण करने की एक अराजक प्रक्रिया निरन्तर लागू है; सभी मनुष्य एक दूसरे के दुश्मन हैं; अपना-अपना पेट भरने की इस गन्दी लड़ाई में भाग लेने वाला हर आदमी सिर्फ़ अपनी ही सोचता है और अपने चारों ओर संदेह की दृष्टि से देखता है, ताकि पड़ोसी कही उसका गला न धर दबोचे। थकानें वाली इस पाश्विक लड़ाई के भंवर में फंसकर बुद्धि की श्रेष्ठतम शक्तियाँ दूसरों से अपनी रक्षा करने मे ही नष्ट हो जाती हैं। मानव अनुभव की वह उपलब्धि जिसे "मैं" कहते हैं, एक अंधेरा तहख़ाना

बन जाती है जिसके अन्दर अनुभव को और अधिक समृद्ध न करनें और पुराने अनुभव को तहख़ाने की दम घोंटनेवाली कोठरियों में बन्द रखने की क्षुद्र प्रवृत्तियाँ हावी रहती हैं। भरे पेट के अलावा आदमी को और क्या चाहिए? इस लक्ष्य को पाने के लिए मनुष्य अपने उच्चादर्शों से फिसलकर गिर गया है और ज़ख्मी होकर आँखें फाड़े, पीड़ा से चीखता और कराहता नीचे पड़ा है(गोर्की 1977:136) ।"

गोर्की के पात्र निराशावादी नहीं घोर आशावादी हैं। वे आत्म समर्पण नहीं करते वरन कठिन से कठिन बाधाओं के बीच भी सीना तान कर चलते दिखाई देते हैं। गोर्की के उपन्यास "माँ" (1906) का नायक पावेल अदालत में कहता है -- "हम समाजवादी हैं। इसका मतलब है कि हम निजी सम्पत्ति के ख़िलाफ हैं" निजी सम्पत्ति की पद्धति समाज को छिन्न–भिन्न कर देती है, लोगों को एक–दूसरे का दुश्मन बना देती है, लोगों के परस्पर हितों में एक ऐसा द्वेष पैदा कर देती है जिसे मिटाया नहीं जा सकता, इस द्वेष को छुपाने या न्याय–संगत ठहराने के लिए वह झूठ का सहारा लेती है और झूठ, मक्कारी और घृणा से हर आदमी की आत्मा को दूषित कर देती है। हमारा विश्वास है कि वह समाज, जो इंसान को केवल कुछ दूसरे इंसानों को धनवान बनाने का साधन समझता है, जो अमानुषिक है और हमारे हितों के विरुद्ध है। हम ऐसे समाज की झूठ और मक्कारी से भरी हुई नैतिक पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकते। व्यक्ति के प्रति उसके रवैये में जो बेहयाई और क्रूरता है उसकी हम निन्दा करते हैं। इस समाज ने व्यक्ति पर जो शारीरिक तथा नैतिक दासता थोप रखी है, हम उसके हर रूप के ख़िलाफ लड़ना चाहते हैं और लड़ेंगे कुछ लोगों के स्वार्थ और लोभ के हित में इंसानों को कुचलने के जितने साधन हैं हम उन सबके ख़िलाफ लड़ेंगे। हम मजदूर हैं; हम वे लोग हैं जिनकी मेहनत से बच्चों के खिलौनों से लेकर बड़ी–बड़ी मशीनों तक दुनिया की हर चीज तैयार होती है; फिर भी हमें ही अपनी मानवोचित प्रतिष्ठा की रक्षा करने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। कोई भी अपने निजी स्वार्थ के लिए हमारा शोषण कर सकता है। इस समय हम कम से कम इतनी आजादी हासिल कर लेना चाहते हैं कि आगे चलकर हम सारी सत्ता अपने हाथों में ले सकें। हमारे नारे बहुत सीधे–सीधे है: निजी सम्पत्ति का नाश हो-उत्पादन के सारे साधन जनता की सम्पत्ति हों-सत्ता जनता के हाथ में हो –हर आदमी को काम करना चाहिए। अब आप समझ गये होंगे कि हम विद्रोही नहीं हैं(गोर्की 1975:389)।''

माँ के बाद के गोर्की साहित्य में कुछ प्रमुख रचनाये तो ऐसी हैं , जिनमें 'माँ' का मुख्य विचार अर्थात मानव आत्मा का विकास, उसका पुनरुत्थान या पुनर्जन्म ही नए कलात्मक साँचे में ढालकरआगे बढाया गया है। 'इटली की कथाएं' या उनके आत्म-कथात्मक उपन्यास 'मेरा बचपन' 'जीवन की राहों पर' और 'मेरे विश्वविद्यालय' की कहानिया इसी श्रृंखला की कड़ियाँ मानी जा सकती हैं। इनकी कुछ कहानिया जिनमें 'माता' और 'देशद्रोही की माँ' तो 'माँ' उपन्यास का काव्यमय स्तुतिगान ही हैं ।'माता' कहानी का पहला वाक्य ही यह है-"नारी की, माता की, सर्वविजयी जीवन के उस अक्षय स्रोत की स्तुति में हम अपनी आवाजें बुलंद करें" । इसी तरह 'देशद्रोही की माँ' कहानी का पहला वाक्य है- "माताओं की गौरव गाथा अनंत है!" यह कहानी भी बड़ी मर्मस्पर्शी है । इसमें एक माँ अपने इकलौते बेटे की हत्या इसलिए करती है क्योंकि वह देशद्रोही हो गया था। कहानी का अंत इस तरह होता है – " माता ने पुत्र को अपने काले लबादे में ढँक दिया, उसके हृदय में छुरा भोंक दिया और बेटे ने थर्राहट के साथ आखिरी साँस ली । हां माता से अधिक अच्छी तरह बेटे की हृदय की गति को कौन जान सकता था ? आश्चर्यचकित सिपाहियों के पैरों के पास पुत्र के शव को लुढ़काकर उसने अपने नगर की ओर संकेत

करते हुए कहा: ' एक नागरिक के नाते मैंने अपने देश के लिए वह सबकुछ कर दिया जो मैं कर सकती थी और माता के नाते मैं हूँ अपने पुत्र के साथ । और यह कहकर उसने अपने पुत्र के खून से लथपथ वह गरम छुरा जोर से अपनी छाती में भोंक लिया – इस बार भी उसने ठीक निशाना साधा – क्योंकि टीसते दिल को ढूँढना मुश्किल नहीं होता।

उन्नीसवीं शताब्दी के रूमानी और यथार्थवादी साहित्य के मुकाबले गोर्की ने एक "सकारात्मक " नायक की रचना की जो समाज में एक आदर्श के लिए जीता है और जनता की सामूहिक सहायता से उस आदर्श की प्राप्ति के लिए संघर्ष करता है। इस दिशा में गोर्की का उपन्यास "माँ " (1906) केवल सामाजिक संघर्षों का महाकाव्य ही नहीं है। वह नए परिवर्तित मानव का चित्र भी हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में हमें रूस की सदियों की दलित पीड़ित साधारण जनता सीना तान कर खड़ी होती नज़र आती है

उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों के रुसी प्रगतिशील लेखकों की कृतियों में कृषक दास प्रथा और उससे उत्पन्न होने वाली बुराइयों पर तीखा प्रहार मिलता है। इस तथ्य को प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'पूस की रात 'में बड़े ही कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। जिस समय प्रेमचंद ने इस कहानी की रचना की उस समय सामंती प्रथा टूट रही थी। सामंतवादी प्रथा के टूटने या बिखरने का अर्थ ही होता है , जमीन के प्रति किसान के मोह का टूटना। किसान का जमीन से मोह भंग होने का दूसरा अर्थ होता है मजदूर बनना। 'पूस की रात ' कहानी का अंत इन शब्दों से होता है .... "दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी हुई थी; पर हल्कू प्रसन्न था।
मुन्नी ने चिंतित होकर कहा -- अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।
हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा - रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा। "(प्रेमचन्द: २०१३(
यही मजदूर वर्ग 'समाजवादी' प्रथा का आधार स्तम्भ है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों को 'सेवासदन)1918 से लेकर ('गोदान)1936 लें तो उनके :तक समग्रत (समय के उत्तरी भारत के हर वर्ग के जीवन के हर पक्ष का यथार्थवादी चित्रण उनमें हमें मिलेगा; लेकिन यथार्थ की यह व्यापकता और विविधता उनके एक ही उपन्यास में भी मिल जाएगी। 'गोदान में उनकी उपन्यास कला का चरमोत्कर्ष हुआ है। उदाहरण के लिए इस उपन्यास में चित्रित यथार्थ को देखें। उनके इस उपन्यास के केन्द्र में किसान के शोषण की समस्या है। इसका नायक होरी किसान है। वह और उसका परिवार दिनरात हाड़तोड़ मेहनत करते हैं-, फिर भी विपन्न हैं। वे अपनी मूलभूत अनिवार्यताएँ भी ठीक से पूरी नहीं कर पाते। होरी की एक छोटीसी महत्त्वाकांक्-षा हैएक गाय पालना। अपनी इस - आकांक्षा को वह छलछन्द से पूरी भी करता है, लेकिन वही उसकी त्रासदी का मुख्य कारण बनती है। लेकिन वह हताश नहीं है। जब स्थिति कुछ सुधरती दिखती है तो वह फिर इस महत्वाकांक्षा को पाल लेता है। वह इसी को पूरा करने के लिए किसान से मजदूर बनता है। दिन में सड़क के लिए लूधूप सहता हुआ आठ आने रोज की मजदूरी पर ऊसर में कंकड़ों की - खुदाई करता है, और रात को डिब्बी के सामने बैठकर सुतली कातता है। और एक दिन उसे लू लग गई और और वह अपनी 'महत्त्वाकांक्षा पूरी किए बिना ही मर गया। धनिया से कहा गया कि वह गोदान करा दे। धनिया यन्त्रवत उठकर अन्दर गई

और सुतली बेचकर लाए गए बीस आने होरी के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली-"महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी गोदान)पृष्ठ" ।(327 :

कड़ी मेहनत, निरन्तर दैन्य, अपूर्ण आकांक्षाएँभारतीय किसान के जीवन का यथार्थ है। -यही होरी के जीवन का- शहर में जन्मे, पलेबढ़े-, स्वदेश के साथसाथ विदेशों में भी शिक्षित अर्थशास्त्रियों और पूँजीपतियों के यह कहने के बावजूद - कि भारतीय किसान सम्पन्न हो गया और भारतीय स्वाधीनता के बावजूद किसान के जीवन का यथार्थ नहीं बदला है। होरी अन्त तक निराश नहीं हुआ, लेकिन प्रेमचन्द अपने यथार्थ अनुभवों के कारण निराश हो गए थे। तभी तो उन्होंने 'गोदान को दुखान्त बनाया। उन्होंने देखा था कि किसान का शोषण करनेवाले जमींदार राय साहब अमरपाल सिंह, पटवारी लाला पटेश्वरी, पुरोहित दातादीन, दारोगाजी, महाजन झिगुरी सिंह आदि के रहते होरी मर ही सकता है; सुखी और सम्पन्न नहीं हो सकता। किसान, जमींदार और महाजन के साथसाथ प्रेमचन्द ने शहर के मध्यवर्ग के यथार्थ का चित्रण - भी'गोदान में किया है।

प्रेमचंद में प्रेम का व्यापार भी शब्दों से उतना मुक्त नहीं है। गोबर किशोर है और सामने झुनिया को पाता है। झुनिया छोटीसी थी तभी ग्राहकों के घर दूध ले जाया करती थी। ससुराल में भी उसे गाहकों के घर दूध पहुँचाना पड़ता - था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था।उसका तरहतरह के मनुष्यों से- साबका पड़ चुका था। दोचार रुपए - हाथ लग जाते थे, घड़ी भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था। मगर यह आनंद जैसे मंगनी की चीज़ हो; इसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न थावह ऐसा प्रेम चाहती थी जिसके लिए वह जिए और मरे ., जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती है। यह झुनिया खूब बात करती है। कहती है, 'तुम मेरे हो चुके, कैसे जानूं?' गोबर ने कहा, 'तुम जान भी चाहो तो दे दूँ।' 'जान देने का अर्थ भी समझते हो?' 'तुम समझा भी दो न', 'जान देने का अर्थ है साथ रहकर निबाह करना। एक बार हाथ पकड़कर उम्रभर निबाह करते रहना। - चाहे दुनिया कुछ कहे, चाहे माँबाप-, भाईबंद-, घरद्वार सब कुछ छोडना पड़े। मुँह में जान देनेवाले बहुतों को देख चुकी-, भौंरों की भांति फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं!तुम भी वैसे ही न उड़ जाओगे .'

आगे भी वह कहती जाती है, 'एक से एक ठाकुर, महाराज, बाबा, वकील, अमले, अफसर अपना रसियापन दिखाकर मुझे फंसा लेना चाहते हैं। कोई छाती पर हाथ रखकर कहता है, 'झुनिया तरसा मत।' कोई मुझे रसीलीनशीली - चितवन से घूरता है, मानो मारे प्रेम के बेहोश हो गया है, कोई रुपए दिखता है, कोई गहने। सब मेरी गुलामी करने को तैयार रहते हैं, उम्रभर-, बल्कि उस जन्म भी। लेकिन मैं उन सबों की नस पहचानती हूँ, सब के सब भौंरे हैं, रस लेकर उड़ जाने वाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूँ, तिरछी नज़रों से देखती हूँ, मुस्कराती हूँ। वे मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूँ गोदान)पृष्ठ।(69 : '

प्रेमचंद भविष्यद्रष्टा लेखक थे। आज गुजरात में दलित प्रतिरोध और आक्रोश के जो स्वर सुनाई पड़ रहे हैं, प्रेमचंद ने इन आहटों को आठ दशक पहले सुन लिया था। 'गाय तुम्हारी माता है तो तुम्हीं अपनी माता का क्रिया-कर्म करो' के नारे के साथ गुजरात के दलितों द्वारा मृत गायों का चमड़ा उतारने से इनकार के प्रतिरोधी स्वर की अनुगूंज 'गोदान' के सिलिया-मातादीन प्रसंग में सुनी जा सकती है। यहां दलित युवती सिलिया का पिता हरखू चर्मकार अधिकार पूर्वक यह मांग करता है कि ''तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं... हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो।'' दलित हरखू द्वारा पंडित मातादीन के मुंह में हड्डी डालने के प्रसंग में प्रेमचंद सोच-समझ कर प्रतिरोध का धार्मिक मुहावरा अपनाते हैं, क्योंकि जो धर्म मात्र 'खानपान, छूत विचार' पर टिका हुआ था उसे 'जनेऊ तोड़ने' और खानपान को भ्रष्ट करके ही चुनौती दी जा सकती थी।

इस घटना को उपन्यास की अंतर्वस्तु में विन्यस्त करके प्रेमचंद भारतीय समाज में दलितों की उस उभरती शक्ति और प्रतिरोधी चेतना को अभिव्यक्त कर रहे थे, जिसकी खबर राष्ट्रीय आंदोलन को नहीं थी और जो राष्ट्रीय इतिहास से आज भी बेदखल है। यहां यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि 'गोदान' का यह प्रसंग न मनोगत है और न ही आरोपित। कारण कि 'गोदान' लिखे जाने के लगभग एक दशक पूर्व 1927 में महार सत्याग्रह के दौरान आंबेडकर ने 'मनुस्मृति' जला कर हिंदू धर्म के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया था और 1935 में तो हजारों दलितों के समक्ष उन्होंने यह घोषणा भी की थी कि वे ''भले ही हिंदू धर्म में जन्मे हों, लेकिन हिंदू के रूप में मरेंगे नहीं।'' गांधी-आंबेडकर के बीच 'पूना पैक्ट' का महाविवाद भी 'गोदान' के इस प्रसंग के औचित्य को तर्क-सिद्ध करता है।

'गोदान' के पात्रों के रूप में हाशिये के समाज की स्त्रियों की मुखरता श्रम की शक्ति के रेखांकन के साथ-साथ कुलीन पुरुष सत्ता को प्रश्नांकित भी करती है। 'गोदान' के जिस पुरोहित दातादीन ने होरी की जमीन-जायदाद को गिरवी रख कर किसान से मजदूर बना दिया, धनिया उसे भी ललकारते हुए कहती है- ''भीख मांगो तुम, जो भिखमंगे की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहां काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएंगे।'' प्रेमचंद यहां नारी स्वतंत्रता को नारी श्रम से जोड़ते हुए स्त्री मुक्ति का जो रास्ता दिखाते हैं, वह स्त्री की आत्मनिर्भरता का ही नहीं, बल्कि आत्मनिर्णय का भी द्वार खोलता है।

'गोदान' के स्त्री-विमर्श पर ध्यान केंद्रित करते हुए यह तथ्य भी उजागर होता है कि उपन्यास की दलित और श्रमशील समाज की स्त्रियां अपने अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति अधिक सजग और मुखर हैं। धनिया के अलावा झुनिया, नोहरी, चुहिया, सोना सहित कई अन्य स्त्रियों में नारी अस्मिता के अंकुरण और प्रतिरोध की चेतना को लक्षित किया जा सकता है। 'अबला जीवन की आंचल में दूध और आंखों में पानी' की छवि से अलग ये स्त्रियां बिना किसी नारीवादी मुहावरे में ढले, अपने प्रतिरोध को स्वत:स्फूर्त ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। 'गोदान' का नारी-विमर्श एकलवादी न होकर भारतीय सामाजिक संरचना के अनुकूल बहुलवादी है। यहां पितृसत्ता का अनुकूलन है, तो उससे मुक्ति की बेचैनी भी।

विवाह संस्था की आलोचना है, तो उसके महत्त्व का रेखांकन भी। मेहता-मालती की तर्ज पर बिन विवाह 'लिव इन' की मुक्ताकांक्षा है, तो आदर्शवादी प्यार का छलावा भी। पति परमेश्वर का आदर्श है, तो तलाक के अधिकार का रेखांकन भी।

सच है कि 'गोदान' में प्रेमचंद नारीवाद का कोई एक नुस्खा न आरोपित कर जो व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, वही भारतीय समाज का स्त्री यथार्थ है, जो आज भी प्रासंगिक है। महत्त्वपूर्ण यह है कि यह सब प्रेमचंद तब कर सके थे, जब न तो नारी मुक्ति की कोई मुखर चेतना थी और न ही कोई संगठित नारी आंदोलन। सही अर्थ में 'गोदान' आजादी के पूर्व बनते हुए भारतीय राष्ट्र का रूपक है। इसे किसान जीवन की महागाथा के रूप में ही सीमित न करके भारतीय राष्ट्रवाद के आलोचनात्मक भाष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। 'गोदान' के जिन अंशों को नगरीय और ग्रामीण जीवन की फांक के रूप में ग्रहण कर अनावश्यक मानने का सरलीकरण किया जाता रहा है, उन्हीं में भारतीय राष्ट्र बनने की प्रक्रिया और वर्तमान जनतंत्र की विकृति की पहचान भी की जा सकती है। राय साहब, मेहता, खन्ना और मिर्जा सरीखे आरामतलब भू-स्वामियों, बौद्धिकों, पूंजीपतियों द्वारा पुष्पित-पल्लवित राष्ट्रीय आंदोलन किस तरह के जनतंत्र की नींव डालेगा, इसके भरपूर संकेत प्रेमचंद ने 'गोदान' में दिए हैं।

यह अनायास नही है कि जनतंत्र के धनिकतंत्र में बदलने की प्रक्रिया को बेपर्दा करते हुए 'गोदान' के पात्र मिर्जा साहिब से प्रेमचंद यह कठोर टिप्पणी करवाते हैं कि "...जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपए हैं। बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलने वाले, जो जबान और कलम से पब्लिक को जिस तरफ चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलेक्शन के पास न जाऊंगा! मेरा प्रोपेगंडा अब डेमोक्रेसी के खिलाफ होगा। ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचंद ने यह सब देश आजाद होने के दस वर्ष से भी अधिक पहले लिखा था। स्वीकार करना होगा कि प्रेमचंद की भारतीय समाज की जो गहरी आतंरिक समझ थी वह उन्हें एक साथ महान लेखक और समाजशास्त्री का दर्जा देती है। 'गोदान' और प्रेमचंद की अमरता के स्रोत महज साहित्यिक संरचना में न होकर भारतीय सामाजिक संरचना के उन स्रोतों में हैं, जो प्रेमचंद के साहित्य का मूल आधार है। जब तक ये स्रोत जीवित रहेंगे तब तक प्रेमचंद और 'गोदान' की अमरता और अनिवार्यता बरकरार रहेगी। प्रेमचंद होने का महत्त्व भी यही है।

उपसंहार:

गोर्की और प्रेमचंद , दोनों सही अर्थ में मानवतावादी लेखक थे।दोनों को बचपन में ही जीवन के जो कटु अनुभव हुए थे , उन्होंने इन दोनों को इस बात की चेतना करवा दी थी कि उनके इर्द गिर्द बहुत कुछ ऐसा है ,जिसे नहीं होना चाहिए , इतना अधिक अन्याय ,अत्याचार ,अपमान ,शोषण ,उत्पीड़न, दुखदर्द , ढोंग ,पाखंड अन्धविश्वास , अज्ञानता और लूट-खसोट है कि अधिकतर लोगों के लिए जीवन एक यातना बना हुआ है, वे सभी तरह के शोषण, अपमान,अन्याय,और उत्पीड़न के शिकार हैं । किन्तु उनके ऐसे भद्दे , घिनौने , बेरंग और उदासी भरे जीवन को ऐसा नहीं रहना चाहिए , उसे

बदलना चाहिए और सामाजिक चेतना रखनेवाले , अपने मानवीय कर्तव्य के प्रति सजग हर व्यक्ति को उसे बदलने के लिए , उसे बेहतर बनाने के लिए पूरा जोर लगाना चाहिए ।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यदि गोर्की ने रुसी गद्य साहित्य की समृद्ध यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उसे एक नया आयाम दिया , जीवन की समस्याओं के समाधान, अन्याय- शोषण , दमन उत्पीड़न और असमानता की समाप्ति के साधन के रूप में समाजवाद को अपना आदर्श स्वीकार करते हुए साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद की धारा प्रवाहित की ,तो प्रेमचंद ने हिंदी-उर्दू साहित्य का वास्तविक जीवन से नाता जोड़ा , उसे तिलिस्म और ऐय्यारी के मनगढ़ंत किस्सों की दुनिया से बहार निकाला , सभी तरह के सामाजिक नासूरों पर नस्तर चलाया , बेहतर और न्यायपूर्ण जीवन की खोज में समाधान खोजने और सुझाने का प्रयत्न किया तथा निरंतर विकास करते हुए इस तथ्य को समझा कि औपनिवेशिक दस्ता से मुक्ति पाने के बावजूद भी भारत के जनसाधारण का जीवन सुधर नहीं जायेगा, क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था इसकी संभावना नहीं देगी, भले ही जॉन की जगह गोविन्द शासक बन जाये । सही अर्थों में यह आजादी नहीं होगी , वास्तविक आजादी यानि आर्थिक आजादी – तो तभी आएगी जब शोषण मुक्त और सभी को समान अवसर देने वाली सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो सकेगी । प्रेमचंद के लिए इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया था कि ऐसी व्यवस्था समाजवाद ही हो सकती है । वो ऐसा इसलिए कह रहे थे क्योंकि एक ठोस सबूत के रूप में सोवियत संघ उनके सामने था । सोवियत रूस की बढ़ती प्रतिष्ठा , सभी क्षेत्रों में उसकी प्रगति, बहुत बड़ी सीमा तक उन सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन , जो साधारण लोगों के जीवन को नरक बनाते हैं , ऐसे तथ्य थे , जिन्हें एक सजग लेखक के रूप में प्रेमचंद ने जाना –समझा , उनके महत्व को आँका और यह अनुभव किया कि मानव कल्याण का यही मार्ग हो सकता है ।

गोर्की ने यदि मजदूर वर्ग के पात्रों को नायक बनाया तो प्रेमचंद ने मुख्यतः किसानो और अछूतों को। किन्तु इस अंतर के बावजूद रुसी और भारतीय साहित्य में ये नए जनवादी स्वर थे, नयी समस्याएं , नये विषय, नये बिम्ब , नये पात्र, अभिव्यक्ति और कला के नये मार्ग तथा नये साहित्यिक समाधान थे । दोनों लेखकों ने सामाजिक वर्ग और श्रेणी विभाजन की पृष्ठभूमि में ऐसे व्यक्तियों का पक्ष लिया , उनकी मुक्ति और उनके अधिकारों की आवाज उठाई , जो शोषित, पीड़ित, उपेक्षित और अधिकारहीन थे। नारी भी हमारे समाज का एक ऐसा ही अंग है ।माँ , बेटी, बहन, और पत्नी के रूप में नारी की जो प्रतिष्ठा होनी चाहिए वह नहीं मिलती बल्कि उसकी अवहेलना की जाती है , गोर्की और प्रेमचंद ने सामान रूप से नारी की जोरदार वकालत की ।

संदर्भ:

- Gupta, Prakash Chandra (1998), *Makers Of Indian Literature Prem Chand*, New Delhi: Sahitya Akademi.
- Gorky, Maxim (2001), *On Literature: Selected Articles,* California: University Press of the Pacific .
- Gorky, Maxim (1946), *Literature and Life,* London: Hutchison International Authors.

- गोर्की, मैक्सिम, (इत्यादि), (1977), लेखनकला और रचना कौशल , अनुवाद -अशरफ़ अली, मास्क़ो : प्रगति प्रकाशन ।
- गोर्की, मैक्सिम,,(1975) माँ ,अनुवाद-श्रीवास्तव ,कामता प्रसाद,दिल्ली : प्रभात प्रकाशन ।
- Mukharjee, Meenakshi, (1985), *Realism and Reality: The Novel and Society in India,* Delhi: Oxford University Press.
- प्रेमचंद, (1974) गोदान, इलाहबाद: सरस्वती प्रेस।
- Pradhan, Sudhi, (1985), *Marxist Cultural Movement in India, vol-1,* Calcutta: New Rooplekha Press.
- PalmeDutt, Rajani (1956), *India Today,*Bombay: Peoples.
- Rais, Qamar, (1978), October Revolution- Impact on Indian Literature, New Delhi: Sterling Publishers.
- शर्मा, राम विलास (1989), प्रेमचंद और उनका युग, नई दिल्ली: राज कमल प्रकाशन ।
- _____ (2007), मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, नई दिल्ली: राज कमल प्रकाशन ।
- विश्वनाथ प्रसाद, (1955) प्रेमचंद की महानता (प्रेमचंद और गोर्की, संपा। शचीरानी गुर्टू,), नई दिल्ली: राज कमल प्रकाशन।